प्रवचन-१५, श्लोक-१६, गाथा-९, १०, सोमवार, फाल्गुन कृष्ण ४, दिनांक १५-०३-१९७१

गुजराती चलता है। यह नियमसार, जीव अधिकार, ९वीं गाथा। इसमें धर्मास्तिकाय का वर्णन आ गया। जीव का, पुद्गल का, धर्मास्तिकाय का (वर्णन) आ गया और अधर्मास्तिकाय का (वर्णन) अब चलता है।

स्वभावस्थितिक्रियारूप और विभावस्थितिक्रियारूप परिणत जीव-पुद्गलों को स्थिति का (स्वभावस्थिति का तथा विभावस्थिति का) निमित्त, सो अधर्म है। परमाणु हो या जीव हो; अपनी स्वभावस्थिति करे, जैसे जीव सिद्ध में ऊर्ध्वगति करे तो भी वह स्वभावगति कहलाती है, उसे धर्मास्ति निमित्त है और स्थिर हो, उसे अधर्म का निमित्त है।

इसी तरह परमाणु स्वभावरूप से अकेली गति करें तो वह स्वभावगति। परमाणु एक स्थान में, स्थिर हो, वह तो स्वभावस्थिति क्रिया है और पुद्गल स्कन्ध जो ऐसे गति करे तो वह प्रत्येक परमाणु विभावगति की परिणति से क्रिया करे। एक-एक परमाणु स्वतन्त्र है। विभावरूप से परिणमता एक-एक परमाणु गति करे, उसमें धर्मास्ति निमित्त और विभावरूप से परिणमन करके परमाणु वहाँ स्थिर हो, या स्कन्ध, उस स्कन्ध में के परमाणु की बात है न? उसे अधर्मास्ति का निमित्त है। देखो! समय-समय का परमाणु, स्कन्ध में होने पर भी और वह उसका विभावरूप परिणमन है; वह पर के कारण नहीं है, उसकी अपनी योग्यता के कारण विभावरूप परिणमन है। इसी तरह जीव का भी गति आदि में संसारदशा में विभावरूप गति का परिणमन स्वतन्त्र है। विभाविक होने पर भी, उसे पर के कारण वह विभाव परिणमन है - ऐसा नहीं है। ऐसी स्वतन्त्र स्थिति है।

निमित्त, सो अधर्म है। नीचे स्पष्टीकरण किया है। ***सिद्धदशा में जीव स्थिर रहता है, वह जीव की स्वाभाविकस्थितिक्रिया है और संसारदशा में स्थिर रहता है, वह जीव***

की वैभाविकस्थितिक्रिया है। आत्मा एक जगह रहे तो वह उसकी वैभाविकक्रिया है। ***अकेला परमाणु, स्थिर रहता है, वह पुद्गल की स्वाभाविकस्थितिक्रिया है और स्कन्ध स्थिर रहता है, वह पुद्गल की (स्कन्ध के प्रत्येक परमाणु की) वैभाविकस्थिति -क्रिया है।*** स्वयं के कारण स्थिर रहा, स्वयं के कारण से वैभाविक होने पर भी स्वयं के कारण स्थिर (हो), उसमें अधर्मास्ति का निमित्त है। ***इस जीव-पुद्गल की स्वाभाविक तथा वैभाविक स्थितिक्रिया में अधर्मद्रव्य निमित्तमात्र है।*** अब आकाश और काल दो रहे।

(शेष) पाँच द्रव्यों को अवकाशदान (अवकाश देना)... रहने का स्थान, **जिसका लक्षण है, वह आकाश है।** यह भी भगवान ने छह द्रव्यों में आकाशद्रव्य स्वतन्त्र है, ऐसा देखा है। **(शेष) पाँच द्रव्यों को वर्तना का निमित्त, वह काल है।** काल के अतिरिक्त पाँच द्रव्य हैं, उनके परिणमन में निमित्तकारण काल है। **(जीव के अतिरिक्त) चार अमूर्तद्रव्यों के शुद्ध गुण हैं;...** जीव के अतिरिक्त चार अमूर्त; पुद्गल के अतिरिक्त; धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल के शुद्ध गुण हैं। **उनकी पर्यायें भी वैसी (शुद्ध ही) हैं।** चार द्रव्यों के कभी अशुद्धता होती नहीं। परमाणु और जीव के अतिरिक्त चार द्रव्य हैं, उनमें अशुद्धता कभी (होती) नहीं।

श्लोक-१६

[अब, नवमी गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक द्वारा छह द्रव्य की श्रद्धा के फल का वर्णन करते हैं :—]

(मालिनी)

इति जिनपतिमार्गाम्भोधि-मध्यस्थरत्नं,
द्युतिपटलजटालं तद्धि षड्द्रव्यजातम्।
हृदि सुनिशित-बुद्धिर्भूषणार्थं विधत्ते,
स भवति परमश्री-कामिनी-कामरूपः ।।१६।।

(वीरछन्द)

जो जिनपति के मार्ग उदधि के मध्य सदा स्थिर रहता।
वह षट्द्रव्य समूह रत्न है महातेज किरणों वाला॥
तीक्ष्ण बुद्धियुत जो नर उसको भूषणार्थ उर धरते हैं।
परमश्रीरूपी रमणी को वे नर निश्चित वरते हैं॥१६॥

श्लोकार्थ :- इस प्रकार उस षट्द्रव्यसमूहरूपी रत्न को, जोकि (रत्न) तेज के अम्बार के कारण किरणोंवाला है और जो जिनपति के मार्गरूपी समुद्र के मध्य में स्थित है; उसे जो तीक्ष्ण बुद्धिवाला पुरुष, हृदय में भूषणार्थ (शोभा के लिए) धारण करता है, वह पुरुष परमश्रीरूपी कामिनी का वल्लभ होता है (अर्थात्, जो पुरुष अन्तरंग में छह द्रव्य की यथार्थ श्रद्धा करता है, वह मुक्तिलक्ष्मी का वरण करता है)॥१६॥

श्लोक-१६ पर प्रवचन

टीका पूर्ण करते हुए मुनिराज श्लोक द्वारा कहते हैं—

इति जिनपतिमार्गाम्भोधि-मध्यस्थरत्नं,
द्युतिपटलजटालं तद्धि षड्द्रव्यजातम्।
हृदि सुनिशित-बुद्धिर्भूषणार्थं विधत्ते,
स भवति परमश्री-कामिनी-कामरूपः।।१६।।

इस प्रकार उस षट्द्रव्यसमूहरूपी रत्न... छह द्रव्यों की व्याख्या की। **षट्द्रव्यसमूहरूपी रत्न को, जोकि (रत्न) तेज के अम्बार के कारण किरणोंवाला है...** अर्थात् कि प्रत्येक द्रव्य अपनी शक्ति से निभा हुआ है। **तेज के अम्बार के कारण किरणोंवाला है...** अपनी शक्ति के भाव से ही वह स्वयं परिणम रहा है। षट्द्रव्य भगवान के शास्त्र में है। वे अन्यत्र कहीं नहीं होते। समझ में आया? और षट्द्रव्य की पर्याय स्वाभाविक या विभाविक, उनमें चार के अतिरिक्त, जीव-पुद्गल की दोनों (की) स्वतन्त्र उस-उस समय की है।

जो जिनपति के मार्गरूपी समुद्र के मध्य में... वीतराग के मार्ग में छह द्रव्य हैं - ऐसा कहते हैं। सर्वज्ञ के अतिरिक्त वे कहीं नहीं होते। धर्मास्ति और अधर्मास्ति अन्यत्र नहीं है। धर्मास्ति-अधर्मास्ति न हों तो लोक-अलोक के दो भाग ही नहीं हो सकते। लोक और अलोक के दो भाग है, इससे दोनों द्रव्य अनादि-अनन्त स्थिर हैं, चौदह ब्रह्माण्ड में स्थिर हैं। इस जिनमति के मार्ग, वीतराग मार्ग में **समुद्र के मध्य में स्थित है; उसे जो तीक्ष्ण बुद्धिवाला पुरुष, हृदय में भूषणार्थ...** छहों द्रव्य सिद्ध करके, धर्मी जीव अपनी अनुभव की दृष्टिसहित, छह द्रव्यों की श्रद्धा अपनी शोभा के लिये धारण करता है - ऐसा कहते हैं। **धारण करता है, वह पुरुष...** आत्मा में अन्तर एक द्रव्य का आश्रय दृष्टि होने पर, अनुभव होकर जो सम्यक् हो, उसे परद्रव्य का व्यवहार से ज्ञान सच्चा होता है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? स्वद्रव्य के-चैतन्य के अवलम्बन से जिसे आत्मद्रव्य का ज्ञान यथार्थ हो, उसे ऐसे परद्रव्य का व्यवहार ज्ञान भी सच्चा होता है - ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : अकेला हो, छह द्रव्य न हो...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह न हो तो ऐसी वस्तु ही नहीं है। छह द्रव्य का ज्ञान तो एक समय की पर्याय में समा जाता है। एक समय की पर्याय ही उसे समाहित करनेवाली है। यह तो अनन्त पर्याय का पिण्ड। क्या कहा यह? एक समय की ज्ञान की अवस्था छह द्रव्यों को जाने, ऐसी उसकी सामर्थ्य है। इतना जाने तो वह एक समय की पर्याय जाने, परन्तु उस पर्याय का ज्ञान भी द्रव्य के ज्ञान बिना पर्याय का ज्ञान सच्चा नहीं हो सकता - ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : सब ज्ञान पर चौकड़ी लगाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्योंकि एक ही समय की ज्ञान की दशा में छह द्रव्य जानने की सामर्थ्य है। ऐसी एक समय की ज्ञान की पर्याय सामर्थ्यवाली है। जिसने छह द्रव्य जाने, स्वीकार किये, वह एक समय की पर्याय स्वीकार की। परन्तु एक समय की पर्याय की स्वीकृति कब यथार्थ कहलाये? वस्तु की दृष्टि हुई, वह ज्ञायकमूर्ति शुद्ध चैतन्यधातु। छह द्रव्यों में तो अनन्त सिद्ध आ गये। आ गये या नहीं? उन सबकी श्रद्धा का विकल्प का ज्ञान उसे सच्चा होता है कि जिसे आत्मा अखण्ड आनन्दमूर्ति अभेद शुद्ध चैतन्यधातु का

अनुभव होकर सम्यग्दर्शन हो, उसे इन छह द्रव्यों का व्यवहार ज्ञान सच्चा होता है। गजब! समझ में आया?

कल दोपहर को अपने नहीं आया था? दोपहर को आया था न? जिसे स्वद्रव्य का ज्ञान हो, वह पानी की शीतलता का और उष्णता का भेद जानता है। उसका व्यवहार ज्ञान सच्चा होता है। जिसे स्वद्रव्य का ज्ञान हो, वह सब्जी और लवण के खारेपन की भिन्नता को वास्तविक (रूप से) जानता है। आहा..हा..! समझ में आया?

(यहाँ) कहते हैं कि जिसे ऐसा छह द्रव्यों का वास्तविक (ज्ञान हो), उसमें तो कारणपरमात्मा, कार्यपरमात्मा सब आ गया न? कारणजीव, कार्यजीव इसमें आ गया। समझ में आया? त्रिकाली भगवान आत्मा, महाप्रभु की जिसे अन्तर में दृष्टि और भान है, उसे छह द्रव्यों का ज्ञान होता है, वह मोक्ष का कामी, अल्प काल में, मोक्ष को जाता है, ऐसा कहते हैं।

वह पुरुष परमश्रीरूपी कामिनी का वल्लभ होता है... लो! **(अर्थात्, जो पुरुष अन्तरंग में छह द्रव्य की यथार्थ श्रद्धा करता है, वह मुक्तिलक्ष्मी का वरण करता है)** समझ में आया? उसे केवलज्ञान होकर (वह) मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : छह द्रव्य तो सब-श्वेताम्बर-दिगम्बर सबको मान्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन मानता है छह द्रव्य? वास्तविक छह द्रव्य मानता है, यह किसे कहना? त्रिकाली कारणद्रव्य जीव है, उसका आश्रय ले तो समकित होता है, ऐसा तो उस कारणजीव का स्वरूप है। अब उस कारणजीव को मानता नहीं और राग से होता है, निमित्त से होता है - (ऐसा मानता है), वह एक भी तत्त्व को यथार्थरीति से नहीं मानता। पण्डितजी! आहा..हा..! समझ में आया? छह द्रव्य में तो यह आया नहीं? जीव का वैभाविक परिणमन, परन्तु गति जब, क्षायिक समकिती हो, परन्तु नरक में गति करता हो, वह अपने विभाव परिणमन के कारण गति करता है, कर्म के कारण नहीं।

मुमुक्षु : यह तो इसमें नहीं लिखा, कर्मशास्त्र में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कर्मशास्त्र में क्या लिखे? निमित्त कौन—यह ज्ञान कराया है। यहाँ तो समय-समय का क्षायिक समकिती जीव का विभाव परिणाम नरक में जाये,

तो भी वह स्वयं की गति की विभाविक परिणमन की योग्यता से वहाँ जाता है। उसे कर्म ले जाता है – ऐसा है नहीं। ऐसा द्रव्य का स्वरूप ही नहीं है – ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। छह द्रव्य में उसकी विभाविक परिणति से गति करो या स्वाभाविक परिणति से गति करो, वह अपनी पर्याय की योग्यता है; उसमें पर की कोई अपेक्षा है नहीं। समझ में आया?

बहुत समय पहले एक प्रश्न उठा था न? कि भाई! इस स्कन्ध में जो परमाणु है, वह परमाणु तो स्कन्ध के कारण विभावरूप परिणमा है। पण्डितजी! तो अकेला परमाणु था तब विभाव नहीं था, इसमें (स्कन्ध में) साथ मिला, तब विभाव हुआ। – यह प्रश्न था। कल्याणजीभाई! यह तो वीतरागमार्ग है, बापू! एक परमाणु पृथक् था, उसमें विभाव नहीं था, यहाँ स्कन्ध में आया तो विभाव हुआ। प्रत्यक्ष दिखता है कि पर-संयोग हुआ तो विभाव हुआ।

मुमुक्षु : तब आप इनकार क्यों करते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा है नहीं। उस समय परमाणु अन्दर विभावरूप से परिणमित है, स्वभावरूप से नहीं। पृथक् (परमाणु) स्वभावरूप से था; यहाँ विभावरूप (हुआ)। विभावरूप परिणमन उसकी अपनी पर्याय की योग्यता से हुआ है। उस स्कन्ध के रजकण तो निमित्त है; उपादान तो इसका स्वयं का है। समझ में आया? यह प्रश्न वहाँ से उनकी ओर से ईसरी से आता है। समझ में आया? क्यों इस स्कन्ध में परमाणु विभावरूप हुआ है? कि निश्चित स्कन्ध का अन्दर कुछ असर है। स्कन्ध के सम्बन्ध से परमाणु विभावरूप परिणमा है। अकेला परमाणु है, ऐसा यहाँ क्यों नहीं रहा? पण्डितजी! समझ में आया? अकेला परमाणु है, ऐसा यहाँ क्यों नहीं रहा? इसलिए विभावरूप स्कन्ध के कारण हुआ है। (ऐसे प्रश्न आते हैं)। ऐसा है नहीं। आहा..हा..! समझ में आया?

मुमुक्षु : सूक्ष्म था, वह स्थूल हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्थूल हुआ, परन्तु स्थूल क्यों हुआ? स्वयं के कारण हुआ।

मुमुक्षु : स्थूल में आया, इसलिए नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। यह प्रश्न कान्तिभाई देसाई ने बहुत वर्षों पहले किया था। ऐसा कहते हैं कि देखो! अकेला परमाणु सूक्ष्म हो, ऐसा ही यहाँ (स्कन्ध में) सूक्ष्म रहा

है ? यहाँ आया, इसलिए स्थूल हुआ है। यहाँ स्थूल नहीं हुआ तो एक परमाणु स्थूल नहीं तो सब स्थूल नहीं। इसलिए स्थूल हुआ, वह स्थूल के संग से स्थूल हुआ है। ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

इसी प्रकार जीव भी कर्म के संग में है, इसलिए कर्म के संग के कारण विभावरूपी गति करे या विभावरूप परिणमे - ऐसा नहीं है। समझ में आया ? बात तो स्वतन्त्र सब आ गयी। ज्ञानावरणीय कर्म के सम्बन्ध में है; इसलिए ज्ञान हीन परिणमता है - ऐसा नहीं है। स्वयं की हीन परिणमने की उस समय की पर्याय की योग्यता से परिणमता है। कर्म का -जड़ का-दर्शनमोहनीय का निमित्त है, इसलिए यहाँ राग-द्वेष, मिथ्यात्व होता है, ऐसा नहीं है। यहाँ पर द्रव्य की स्वतन्त्र बात का वर्णन किया न ? मिथ्यात्व और राग-द्वेषरूप भी—विभावरूप भी जीव उस-उस समय की उस-उस योग्यता से स्वतन्त्र (परिणमता) है। निमित्त भले हो, परन्तु निमित्त हो, इसलिए यह परिणमन है - ऐसा नहीं है। उस निमित्त की मौजूदगी है, इसलिए विभाव की अस्ति है - ऐसा नहीं है। इसकी स्वयं की पर्याय की... परिणमन की अस्ति है, इसलिए विभाव की अस्ति है। आहा..हा..! बड़ा विवाद तुम्हारे यहाँ। कर्म से ऐसे होता है...।

देखो न! कितना स्पष्टीकरण किया है! यहाँ परमाणु, स्कन्ध में है। प्रत्येक परमाणु गति में विभावरूप से परिणमित हुआ है। तो क्यों ? कि वे अधिक इकट्ठे हैं, इसलिए ? नहीं। स्वयं स्वतन्त्र उस समय की पर्याय से, विभावरूप से हुआ है और स्थिर हुआ है, वह भी स्वयं विभावरूप से होने से (परिणमा है); पर के कारण नहीं। उस समय स्थिर है। वह स्थिर हो गया है ऐसे। समय-समय की परमाणु और जीव की विभावपर्याय भी भिन्न-भिन्न समय की स्वतन्त्र है। आहा..हा..! कहो, भीखाभाई! यह कहा न ? जिनपति के मार्ग में यह होता है। वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव के मार्ग में यह वर्णन होता है; अन्यत्र होता नहीं। यह १६वाँ कलश हो गया। ९वीं गाथा हुई। (अब) १०वीं।

गाथा-१०

जीवो उवओगमओ उवओगो णाणदंसणो होइ।
णाणुवओगो दुविहो सहावणाणं विहावणाणं ति।।१०।।

जीव उपयोग-मयः उपयोगो ज्ञान-दर्शनं भवति।
ज्ञानोपयोगो द्विविधः स्वभावज्ञानं विभावज्ञानमिति।।१०।।

अत्रोपयोगलक्षणमुक्तम्। आत्मनश्चैतन्यानुवर्ती परिणामः स उपयोगः। अयं धर्मः। जीवो धर्मी। अनयोः सम्बन्धः प्रदीपप्रकाशवत्। ज्ञानदर्शनविकल्पेनासौ द्विविधः। अत्र ज्ञानोपयोगोऽपि स्वभावविभावभेदाद् द्विविधो भवति। इह हि स्वभावज्ञानं अमूर्तं अव्याबाधं अतीन्द्रियं अविनश्वरम्। तच्च कार्यकारणरूपेण द्विविधं भवति। कार्यं तावत् सकलविमलकेवलज्ञानम्। तस्य कारणं परमपारिणामिकभावस्थितत्रिकालनिरुपाधिरूपं सहजज्ञानं स्यात्। केवलं विभावरूपाणि ज्ञानानि त्रीणि कुमतिकुश्रुतविभङ्गभाञ्जि भवन्ति। एतेषां उपयोगभेदानां ज्ञानानां भेदो वक्ष्यमाणसूत्र-योर्द्वयोर्बोद्धव्य इति।

उपयोगमय है जीव वह उपयोग दर्शन-ज्ञान है।
ज्ञानोपयोग स्वभाव और विभाव द्विविध विधान है॥१०॥

अन्वयार्थ :—[जीवः] जीव, [उपयोगमयः] उपयोगमय है। [उपयोगः] उपयोग, [ज्ञानदर्शनं भवति] ज्ञान और दर्शन है।[ज्ञानोपयोगः द्विविधः] ज्ञानोपयोग, दो प्रकार का है - [स्वभावज्ञानं] स्वभावज्ञान और [विभावज्ञानम् इति] विभावज्ञान।

टीका :—यहाँ (इस गाथा में) उपयोग का लक्षण कहा है।

आत्मा का चैतन्य-अनुवर्ती (चैतन्य का अनुसरण करके वर्तनेवाला) परिणाम, सो उपयोग है। उपयोग, धर्म है; जीव, धर्मी है। दीपक और प्रकाश जैसा उनका सम्बन्ध है। ज्ञान और दर्शन के भेद से यह उपयोग दो प्रकार का है (अर्थात्, उपयोग के दो प्रकार हैं—ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग)। इनमें ज्ञानोपयोग भी स्वभाव और विभाव के भेद के कारण दो प्रकार का है। (अर्थात्, ज्ञानोपयोग के भी दो प्रकार हैं

- स्वभावज्ञानोपयोग और विभावज्ञानोपयोग)। उनमें स्वभावज्ञान, अमूर्त, अव्याबाध, अतीन्द्रिय और अविनाशी है; वह भी कार्य और कारणरूप से दो प्रकार का है (अर्थात्, स्वभावज्ञान के भी दो प्रकार हैं—कार्यस्वभावज्ञान और कारणस्वभावज्ञान)। कार्य तो सकल विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान है और उसका कारण, परम-पारिणामिकभाव से स्थित, त्रिकाल निरुपाधिक सहजज्ञान है। केवल विभावरूप ज्ञान, तीन हैं—कुमति, कुश्रुत, और विभङ्ग।

इस उपयोग के भेदरूप ज्ञान के भेद, अब कहे जानेवाले दो सूत्रों द्वारा (११ और १२वीं गाथा द्वारा) जानना।

[*भावार्थ :*— चैतन्यानुविधायी परिणाम, वह उपयोग है। उपयोग, दो प्रकार का है—(१) ज्ञानोपयोग, और (२) दर्शनोपयोग। ज्ञानोपयोग के भी दो प्रकार हैं—(१) स्वभावज्ञानोपयोग, और (२) विभावज्ञानोपयोग। स्वभावज्ञानोपयोग भी दो प्रकार का है — (१) कार्यस्वभावज्ञानोपयोग (अर्थात्, केवलज्ञानोपयोग), और (२) कारणस्वभाव -ज्ञानोपयोग (अर्थात्, सहजज्ञानोपयोग*)। विभावज्ञानोपयोग भी दो प्रकार का है—(१) सम्यक् विभावज्ञानोपयोग, और (४) मिथ्या विभावज्ञानोपयोग (अर्थात्, केवल विभाव -ज्ञानोपयोग)। सम्यक् विभावज्ञानोपयोग के चार भेद (सुमतिज्ञानोपयोग, सुश्रुतज्ञानोपयोग, सुअवधिज्ञानोपयोग, और मनःपर्ययज्ञानोपयोग) अब अगली दो गाथाओं में कहेंगे। मिथ्या विभावज्ञानोपयोग के, अर्थात् केवल विभावज्ञानोपयोग के तीन भेद हैं—(१) कुमति-ज्ञानोपयोग, (४) कुश्रुतज्ञानोपयोग, और (३) विभंगज्ञानोपयोग अर्थात् कुअवधिज्ञानोपयोग]।

गाथा-१० पर प्रवचन

जीवो उवओगमओ उवओगो णाणदंसणो होइ।
णाणुवओगो दुविहो सहावणाणं विहावणाणं ति।।१०।।

---

* सहजज्ञानोपयोग, परमपारिणामिकभाव से स्थित है तथा त्रिकाल उपाधिरहित है, उसमें से (सर्व को जाननेवाला) केवलज्ञानोपयोग प्रगट होता है। इसलिए सहजज्ञानोपयोग, कारण है और केवलज्ञानोपयोग, कार्य है। ऐसा होने से सहजज्ञानोपयोग को कारणस्वभावज्ञानोपयोग कहा जाता है और केवलज्ञानोपयोग को कार्यस्वभावज्ञानोपयोग कहा जाता है।

उपयोगमय है जीव वह उपयोग दर्शन-ज्ञान है।
ज्ञानोपयोग स्वभाव और विभाव द्विविध विधान है॥१०॥

देखो! वर्णन किया है। **यहाँ (इस गाथा में) उपयोग का लक्षण कहा है। आत्मा का चैतन्य-अनुवर्ती परिणाम, सो उपयोग है।** देखो! व्याख्या। भगवान आत्मा चैतन्य, उसका अनुवर्ती—उसे अनुसरकर होनेवाले परिणाम, वह उपयोग है। भाषा देखो! जीव में केवलज्ञानरूपी परिणमन हो, मतिज्ञानरूप हो, श्रुतज्ञानरूप हो, अवधिरूप हो, मनःपर्ययरूप हो या अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणारूप हो, वह स्वयं चैतन्य को अनुसर कर होनेवाले परिणाम हैं। वे कर्म को अनुसरकर होनेवाले परिणाम नहीं है। क्या है? सेठी!

आत्मा का चैतन्य-अनुवर्ती (चैतन्य का अनुसरण करके वर्तनेवाला)... जो कुछ अवग्रह हो। मति (ज्ञान) के चार भेद हैं न? अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा। वह पर्याय भी चैतन्य को अनुसरण कर होती है। सुनने के कारण या कर्म के अभाव के कारण ऐसे होती है, ऐसा नहीं है। पण्डितजी! क्या अवग्रह होता है तो विभावज्ञान है? यह कहेंगे। विभावज्ञान है, इन चार ज्ञान को विभावज्ञान कहेंगे। केवलज्ञान को स्वभावज्ञान कहेंगे, तथापि चार ज्ञान के सब अन्तर्भेद—अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा, श्रुत के भी, थोड़ा श्रुत, विशेष श्रुत सब—ऐसा जो परिणाम, वह चैतन्य को अनुसरण कर (होता है)। आत्मा द्रव्य, उसका चैतन्य गुण, उसे अनुसरण कर परिणाम होता है। यह द्रव्य, गुण और पर्याय की स्वतन्त्रता। सुनने को अनुसरणकर परिणाम नहीं होते, ऐसा कहते हैं। क्या है? सेठी! क्या कहते हैं? अभी थोड़ा खोलो, ऐसा कहते हैं।

आत्मा का चैतन्य-अनुवर्ती (चैतन्य का अनुसरण करके वर्तनेवाला) परिणाम,... परिणाम में मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान। और मति के भेद तथा श्रुत के भेद जितने अन्दर पर्याय में दिखते हैं, वे सब पर्याय / परिणाम चैतन्य को अनुसरण करके हुए हैं। पण्डितजी! यह देखो तो सही! क्या है? कर्म के क्षयोपशम के कारण हुए हैं, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा है। वस्तु की स्थिति ऐसी है।

(चैतन्य का अनुसरण करके वर्तनेवाला) परिणाम, सो उपयोग है। देखो,

भाषा! आहा..हा..! एक ही शब्द में... जो अन्तर ज्ञान के, मति के, श्रुत के परिणाम होते हैं, वे उसके द्रव्य के गुण को अनुसरण कर होते हैं। सुनने को अनुसरण कर होते हैं, पढ़ने को अनुसरण कर होते हैं, शब्द से यहाँ (होते हैं), ऐसा नहीं है। समझ में आया? ऐसा मार्ग! कहो, यह कहते हैं या नहीं? यह चश्मा हो तो अन्दर जानने का उपयोग हो। बिल्कुल झूठ बात है। इस समय के ज्ञान के उपयोग के परिणाम वे द्रव्य को और गुण को अनुसरण कर हुए हैं; चश्मे को अनुसरण कर हुए नहीं। देखो! इसमें है या नहीं परन्तु?

मुमुक्षु : सुनते हैं तो विचार बदलते हैं या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : विचार बदलते हैं, आत्मद्रव्य को अनुसरकर बदलते हैं। यह तत्त्व की विपरीतता की निकालवर्ती चीज बताते हैं।

आत्मा अपना स्वभाव जो ज्ञानदर्शन। यहाँ उपयोग तो अभी दो है न? ज्ञान और दर्शन दो। चैतन्य आत्मा और उसका ज्ञान-दर्शन गुण। उसमें जितनी ज्ञान, दर्शन की पर्याय / परिणाम हो, वह सब आत्मा को अनुसरकर है; निमित्त को अनुसरकर, वाणी को अनुसरकर, सुनने को अनुसरकर, पृष्ठ को अनुसरकर या कर्म के क्षयोपशम को अनुसरकर वे परिणाम (होते) हैं, ऐसा नहीं है। आहा..हा..! कल्याणजीभाई! ऐसा वीतराग का तत्त्व है। आहा..हा..! समझ में आया? साधारण बात हो परन्तु उसमें स्वतन्त्रता का ढिंढ़ोरा है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : जीव की पर्याय...

पूज्य गुरुदेवश्री : जीव की पर्याय जीव को अनुसरकर होती है।

मुमुक्षु : चाहे तो स्वभावपर्याय हो या....

पूज्य गुरुदेवश्री : या विभावपर्याय हो। वे कहते हैं न? नहीं कहा? संसारी प्राणी को तो पुद्गल के सहारे से ही सब काम चलता है, ऐसा आया था। अरे! भगवान! क्या करता है तू यह? एक-एक समय की ज्ञान की पर्याय। मति की, अवग्रह की, ईहा की, अवाय की, धारणा की, वह एक-एक समय की पर्याय चैतन्य को अनुसरकर हुई है; निमित्त को अनुसरकर, सुनने को अनुसरकर नहीं। इसका नाम अनेकान्त है। ऐसा नहीं कि उसे अनुसरकर हुई और सुनने को अनुसरकर भी हुई, ऐसे दो कहो तो अनेकान्त हो, ऐसा नहीं है। पण्डितजी! यह सब पण्डिताई के झगड़े।

मुमुक्षु : ....सिद्ध नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : सिद्ध नहीं होता। अपनी ज्ञान की पर्याय का उस समय का अंश स्वयं से है, ऐसे पर के कारण है—ऐसा सिद्ध नहीं होता। आहा..हा..! समझ में आया? ऐ भीखाभाई!

देखो! **(इस गाथा में) उपयोग का लक्षण कहा है। आत्मा का चैतन्य-अनुवर्ती (चैतन्य का अनुसरण करके वर्तनेवाला)...** होनेवाला, परिणमनेवाला **परिणाम, सो उपयोग है।** ज्ञानावरणीय का क्षयोपशम है, इसलिए मति (ज्ञान) के परिणाम होते हैं, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। भाई! यह लेख पूरे गोम्मटसार में तो यह आता है, लो! वह तो निमित्त क्या है, उसका ज्ञान कराया है।

मुमुक्षु : होवे ही।

पूज्य गुरुदेवश्री : होता है। कब नहीं है? उसका प्रश्न ही कहाँ है? यहाँ अपने परिणाम मति के जितने भेद हैं, उनमें का कोई भी भेद अपने में हो, वह अपने को (स्वयं को) अनुसरणकर हुआ है। कहो, भीखाभाई! यह सुनने को अनुसरणकर नहीं। ऐसा कहते हैं। पढ़ने को अनुसरणकर नहीं। देखो तो सही!

मुमुक्षु : वह निमित्त तो रहता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तब निमित्त है तो निमित्त का ज्ञान कराने के लिये तब रहता है।

मुमुक्षु : निमित्त की बात न करो, तब तक मजा नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त भी परद्रव्य है - ऐसी अपनी पर्याय के काल में वह पर्याय परिणमती है, तब उसका स्वतन्त्रपना है। इसके कारण निमित्तरूप परिणमता है, ऐसा है? इसके कारण नहीं, इसके कारण नहीं। आहा..हा..! जैनदर्शन का कोई भी तत्त्व एक बोल में इतना स्वतन्त्र खड़ा होता है।

मुमुक्षु : मोक्ष की सिद्धि स्वतन्त्रता से होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वतन्त्रता से सिद्धि होती है। आहा..हा..!

यहाँ तो कहते हैं कि **आत्मा का चैतन्य-अनुवर्ती (चैतन्य का अनुसरण करके...)** आत्मा द्रव्य, चैतन्य गुण, उसे अनुसरणकर होनेवाला परिणाम, वह पर्याय। भाषा तो देखो!

द्रव्य, गुण और पर्याय। द्रव्य अर्थात् आत्मा, चैतन्य गुण, उसकी जितनी उपयोग की जानने-देखने की पर्याय (हो), वह चैतन्य को अनुसरकर होती है। देखो! ये सब चश्मे से हो, अमुक से हो, बड़ा विवाद करते हैं न?

मुमुक्षु : हाँ परन्तु चश्मा तो चढ़ाना पड़ा।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन चढ़ावे? चढ़ावे कौन और उतारे कौन? वह तो उसकी जड़ की क्रिया है। यह तो आ नहीं गया? एक परमाणु विभावरूप परिणमित है, विभावरूप परिणमकर स्थिर रहता है, वह तो उसके कारण से। क्या अंगुली के कारण, नाक के कारण अन्दर स्थिर रहा है?

मुमुक्षु : दिखता तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका दिखता है? दिखे तो वह उसमें है, ऐसा दिखता है और यह इसमें है, ऐसा दिखता है। वह इसके कारण है, ऐसा कौन देखता है? भीखाभाई! वीतराग सर्वज्ञ का तत्त्व, छह द्रव्य की यह व्याख्या चलती है। उसमें से उपयोग की व्याख्या ली है, चैतन्य का पहला उपयोगलक्षण है न? आहा..हा..!

मुमुक्षु : द्रव्य-गुण-पर्याय से तादात्म्य कहा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी स्वयं से है। समझ में आया? आहा..हा..! आता है उसे अनुसरकर, परन्तु मानता है कि उसके (पर के) कारण हुआ। यह मिथ्याभ्रम अज्ञान है। पहले विचार ऐसे नहीं थे और अभी ऐसे नये अधिकाई के हुए, इसलिए तो कुछ अन्तर पड़ा या नहीं, ये सुनने के अनुसार? नहीं, ऐसा कहते हैं। उस काल में भी वे परिणाम उसके चैतन्य को अनुसरकर हुए हैं। कहो, समझ में आया?

आहा..हा..! ऐसा कहते हैं कि भगवान आत्मा वस्तु और उसमें चैतन्यगुण त्रिकाल है। अब गुण की पर्याय में यहाँ उपयोगगुण लेना है न? उपयोग की जो पर्याय होती है, वह पर्याय, गुण के अनुसार ही होती है। उसकी योग्यता उस समय की पर्याय (होने की है), उस गुण के अनुसार होती है। पर के अनुसार होती है, ऐसा नहीं है। उपयोग की वर्तमान पर्याय स्वयं से स्वयं को अनुसरकर होती है, ऐसा माने उसे वास्तविक चैतन्य के उपयोग को वर्तमान स्वतन्त्र माना, परन्तु जो ऐसा मानता है कि पर के कारण होती है, उसने आत्मा

के उपयोग को नहीं माना। वह तो पर के कारण हुआ, ऐसा माना और पर था तो हुआ (ऐसा मानता है)। कहो, समझ में आया?

लींबड़ी में हमारे चन्द्रशेखर के साथ हुआ था न? तुम्हारे साथ (वार्ता) करते हैं। विचार... ऐसे वाद-विवाद करना नहीं परन्तु अपने विचार करते हैं। यह तो समझना हो तो वह सब समझे। हम कोई उसके साथ विवाद नहीं करते, विचार नहीं करते। हमारी बात सूक्ष्म है। कहा, भाई! यह तुम्हारे लोग समझे और हम न समझें? अरे भगवान! समझने के लिए कहाँ आये हो? तुम तो वाद करने के लिये आये हो। फिर थोड़ी बात हुई, वहाँ बोलो इन सबको पूछो कि देखो! कि चश्मे से ज्ञान होता है या नहीं होता? चश्मा न हो तो होता है? बोलो। तुम्हारा प्रश्न आ गया, कहा, चर्चा हो गयी। कठिन काम, बहुत कठिन काम। ऐई! चन्द्रशेखर है न, जीवाप्रताप का भतीजा, अभी नहीं दिखता। दमा का रोग है। भाई को खबर है। अभी भावनगर आया था। वह आत्मा है, हों!

मुमुक्षु : उसे ऐसा भासित हुआ तो क्या करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह क्या करे? बात ऐसी है कि इस वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है कि इसकी जिस समय की जो पर्याय ज्ञान और दर्शन की, चक्षु की-अचक्षु की, अवधि की केवलज्ञान की, कहा न? केवलज्ञान के परिणाम हुए, वे जीव के चैतन्य को अनुसरकर हुए हैं। यह संहनन मजबूत है और ज्ञानावरणीय का क्षय हुआ, इसलिए केवलज्ञान हुआ, ऐसा नहीं है। आहा..हा..! जैन में तो यह विपरीतता (घुस गयी है), ज्ञानावरणीय से (ज्ञान हीन होता है)।

यह वस्तु स्वतन्त्र सत्य ऐसी है। आहा..हा..! भगवान! जैसे द्रव्य स्वतन्त्र है। जैसे किसी की अपेक्षा है नहीं; उसका गुण भी स्वतन्त्र है, किसी की अपेक्षा नहीं है; वैसे एक समय की पर्याय भी वास्तव में स्वतन्त्र है। यहाँ तो अभी चैतन्य को अनुसरकर कहा। क्योंकि उपयोग है, त्रिकाली में से अनुसरकर, ऐसा कहा। नहीं तो उस समय की पर्याय, वह गुण बिना स्वतन्त्र है। यह तो चिद्विलास में से बताया था। चिद्विलास। गुण बिना पर्याय, पर्याय का कारण है। यहाँ तो अभी गुण को अनुसरकर लेना है।

मुमुक्षु : पर्याय को भी स्वतन्त्र बताया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वतन्त्र है। आहा..हा..! ऐसा है। आहा..हा..! कुछ खबर नहीं

और झगड़ा तथा वाद-विवाद (करे)। 'वाद-विवाद करे सो अन्धा, सद्गुरु कहे सहज का धन्धा।' यह तो सहज का धन्धा है। इस ज्ञानावरणीय से ज्ञान होता, ज्ञानावरणीय में क्षयोपशम न हो तो ज्ञान (खुलता नहीं)। यह रतनचन्दजी बहुत लिखते हैं। जरा कुछ प्रश्न आया और कर्म के कारण ऐसा हुआ, कर्म के कारण ऐसा हुआ। रतनचन्द मुख्तार है न?

मुमुक्षु : धवल में ऐसा लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भले लिखा, परन्तु किस नय का कथन है, ये समझे बिना? वह यथार्थनय का कथन है, यह व्यवहारनय का कथन है, निमित्त का (कथन है)। आहा..हा..! समझ में आया?

उपयोग, धर्म है; जीव, धर्मी है। बारह प्रकार का उपयोग, उसकी पर्याय वह धर्म है। धर्म अर्थात् इसने धारण कर रखा हुआ धर्म। धर्म अर्थात् यह मोक्षमार्ग अभी नहीं। उपयोग जीव ने धारण कर रखा है, इसलिए धर्म और आत्मा धर्मी। समझ में आया? **उपयोग, धर्म है; जीव, धर्मी है।** आहा..हा..! ऐसे कथन सन्तों ने, दिगम्बर मुनियों ने इतने संक्षिप्त शब्दों में एकदम छह द्रव्य का ढिंढ़ोरा पीटा है। प्रत्येक समय की वह-वह वैभाविक या स्वाभाविक पर्याय का कर्ता वह द्रव्य है; दूसरा नहीं, नहीं, और नहीं। यहाँ तो छहों द्रव्यों का विभाजन हो गया। चार तो शुद्ध ही है। दो अशुद्ध (होते हैं), जीव और पुद्गल, तो भी कहते हैं कि यहाँ चार ज्ञान और तीन दर्शन विभाव कहेंगे और केवलज्ञान-केवलदर्शन को स्वभाव कहेंगे, तथापि वह सब स्वभाव कहो, विभाव कहो, परन्तु वह स्वयं को अनुसरकर हुआ है। समझ में आया? आहा..हा..! गजब बात है न! स्वतन्त्रता का ढिंढ़ोरा... आहा..हा..! यह स्वतन्त्र है। ढिंढ़ोरा अर्थात? ऐसा है, ऐसे प्रसिद्ध करते हैं। समझ में आया?

ये आँखें न हो तो कहीं उपयोग काम करे? कहो, ठीक। कान फूट जाये तो सुनने का उपयोग काम करे? ऐई! देवानुप्रिया! भगवान! प्रत्येक समय की पर्याय हीन हो, अधिक हो या विपरीत हो, वह स्वयं को अनुसरकर हो रही है। पर की कोई अपेक्षा है नहीं। निश्चय का स्वतन्त्र का स्वरूप ही ऐसा है। समझ में आया? ज्ञान की पर्याय अन्दर से आती है, तथापि अज्ञानी को भास होता है कि यह, यह इसमें से हुई। उसे यह भ्रम हो जाता है। पोपटभाई! आहा..हा..! ऐसी स्पष्टता... मुनियों, सन्तों, दिगम्बरों ने सर्वज्ञ को अनुसरणकर पन्थ टिका रखा है। आहा..हा..! समझ में आया?

यह तो (संवत्) १९७१ में यह कहा। लाठी के चातुर्मास में। १९७१। ५६ वर्ष हुए। ज्ञान-दर्शन और विकार कर्म के कारण बिल्कुल नहीं, जरा भी नहीं; अपने कारण से है। खलबलाहट हो गयी थी, खलबलाहट हो गयी। दामोदर सेठ बहुत कर्म का माननेवाला था, कर्मपक्षी बहुत कर्मपक्षी। तुम्हारे बातचीत हुई थी। वह इसे गिने नहीं। ऐसा सत्ता प्रिय। चर्चा तुम्हारे बहुत हुई थी। अरे! आहा..हा..! कर्म के कारण होता है, कर्म के बिना नहीं होता, ऐसा किसने सिखाया? हमारे गुरु ने तो सिखाया नहीं था, ऐसा कहते थे। हीराजी महाराज ने तो कहा नहीं था, तो यह कहाँ से लाये?

मुमुक्षु : अन्दर के गुरु के पास से।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पतंग उड़कर कहाँ जायेगी?

मुमुक्षु : सोनगढ़।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहते थे।

मुमुक्षु : उस समय सोनगढ़ था ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सोनगढ़ था नहीं, परिवर्तन भी कुछ नहीं था। ५६ वर्ष पहले। १९७१ के वर्ष। संवत् १९७१। (संवत्) १९७० में दीक्षा ली थी। यह १९७१ की बात है। दोपहर को व्याख्यान चलता था। अष्टमी और चतुर्दशी और पाखी... वे लोग पाखी करते हैं न? तब एक घण्टे मुझे कहते थे। तुम पढ़ो। फिर उसमें आता था। सब सुने। ऐसा कहे कि यह तो कुछ नया कहते हैं। यह गुरु ने कहा नहीं। वह हीराजी महाराज पीछे बैठे, वे सुनें। कुछ दृष्टान्त दिया। भगवती (सूत्र) में पहले शतक के तीसरे उपदेश में ऐसा कहा है कि अपने उठान्तर के बल से वीर्य पुरुषार्थ से ज्ञान की, दर्शन की, आनन्द की इत्यादि विकारी आदि पर्याय स्वयं से होती है, पर से नहीं होती।

मुमुक्षु : भगवती का नाम आवे, इसलिए बोल न सके।

पूज्य गुरुदेवश्री : बोल न सके। परन्तु तब तो यह था ही कब? यह पढ़ा ही कहाँ था? दिगम्बर शास्त्र नहीं पढ़े थे।

मुमुक्षु : बहुत जल्दी हकीकत को पकड़ा।

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग तो यह है। कर्म के कारण होता है, यह बात बिल्कुल इस

जैनशासन में है नहीं। कल्याणजी भाई! यह देखो! निकला यह। है या नहीं अन्दर?

मुमुक्षु : भगवती सूत्र में यह लिखा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह निकाला था, परन्तु वह थोड़ी अटपटी भाषा है। थोड़ी कठिन भाषा है। कांक्षा मोहनीय की भाषा है वहाँ। कांक्षा मोहनीय की जो मिथ्यात्व करता है, वह अपने पुरुषार्थ से करता है, ऐसा पाठ अन्दर है। उसमें से ये सब सिद्धान्त निकाले। कांक्षा मोहनीय अर्थात् मिथ्यात्व।.... मिथ्यात्व वह कांक्षा मोहनीय अपने पुरुषार्थ से करता है। पुरुषार्थ से, वीर्य से, ऐसा पाठ है। इसलिए उसमें से कोई एकदम निकाल नहीं सकता। भगवती (सूत्र) पढ़ा। पहले-पहले ही पढ़ा (संवत्) १९७१ में पढ़ा और कहा यह तो ऐसा है। श्वेताम्बर शास्त्र में से निकाला था। तब तो यह (दिगम्बर शास्त्र) कहाँ पढ़े थे? यह तो १९७८ में सब हाथ आया। १९७८ में। ऐसा मार्ग भगवान का है कहा, भाई! कर्म के, कर्म के कारण कहते हो, वह अपने को जँचता नहीं। हमें यह बात जँचती नहीं। कहो, हरीभाई! समझ में आया इसमें? यह सब ऐसा सूक्ष्म है। अहो! भगवान आत्मा...। और उपशम करे तो भी पुरुषार्थ से करे, ऐसा वहाँ पाठ है। कर्म उपशम हो जाये अपने आप और यहाँ हो जाये, ऐसा नहीं। अपने पुरुषार्थ से अपना भाव उपशम करे। कर्म का उपशम कर्म के कारण। आत्मा अपने पुरुषार्थ से करता है।

यहाँ तो देखो क्या कहा? एक ही शब्द में गजब किया है! ओहो! आत्मा वस्तु, उसमें ज्ञान और दर्शन शक्ति चैतन्य गुण, उसकी समय-समय में जिस काल में जो पर्याय उपयोग की हो, उस काल में वह पर्याय उसके गुण को अनुसरकर होती है। एक ही सिद्धान्त। कहो, समझ में आया? ज्ञानी के पास से ज्ञान मिलना चाहिए, ऐसे शब्द श्रीमद् में आते हैं, वह सब व्यवहार की बातें हैं, क्योंकि ज्ञानियों के शब्द उसके कान में पड़ते हैं, परन्तु पड़ने पर इसका लक्ष्य द्रव्य पर जाये, तब इसे ज्ञान होता है। ऐसे न जाये तो भी अज्ञानी को जो कुछ ज्ञान होता है, वह द्रव्य को अनुसरकर होता है। यहाँ तो बाहर उपयोग है न? मति, श्रुत और विभंग अज्ञान है, वह भी अपने चैतन्य को अनुसरकर होता है। यहाँ बाहर उपयोग है न? समझ में आया? वीतराग का मार्ग ऐसा है, भाई! आहा..हा..!

मुमुक्षु : वह पर्याय भी स्वतन्त्र।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वतन्त्र। यहाँ तो अभी गुण को अनुसरकर कहा है। यहाँ

प्रवचनसार की १०१ गाथा में कहा है कि जो कोई केवलज्ञान या मति (ज्ञान) आदि की पर्याय उत्पन्न होती है, वह उत्पाद, उत्पाद के आश्रय है; ध्रुव के आश्रय नहीं, व्यय के आश्रय नहीं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : क्रमबद्ध हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रमबद्ध ही है परन्तु क्रमबद्ध ऐसा मानना, ऐसे नहीं। वस्तु में से पर्याय आती है, वह वस्तु कैसी है? इसका भान होने पर उसे क्रमबद्ध का ज्ञान सच्चा कहने में आता है। समझ में आया? जैन वीतरागमार्ग, बापू! गम्भीर मार्ग है। जिसे गणधर-चार ज्ञान के धनी जिसकी रचना करे, तथापि वे भगवान को सुनें। आहा..हा..! इन्द्र, तीन ज्ञान का धनी शकेन्द्र और उसकी पत्नी एकावतारी, एक भव में मोक्ष जानेवाले। आहा..हा..! अरे! आस्था तो लाओ, आस्था तो लाओ। ऐसे जीव हैं, वे जीव भी भगवान के पास सुनते हैं, तथापि वे ऐसा मानते हैं कि यह मेरी पर्याय मुझे अनुसरकर होती है। समझ में आया?

मुमुक्षु : चैतन्य अनुसारी।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं को अनुसरकर। बाहर से तो ऐसा बोले, हे नाथ! भरत चक्रवर्ती ने कहा न? जब ऋषभदेव भगवान मोक्ष पधारे। क्या कहलाता है? अष्टापद। भरत चक्रवर्ती को पता पड़ा कि भगवान मोक्ष पधारे हैं। (वे) आये। ऐसे देखने पर आँसुओं की धारा बहती चली जा रही है। इन्द्र, शकेन्द्र भी आये हैं। ये तो बहुत इन्द्र बदल गये, हों! अभी दूसरे इन्द्र हैं, उस समय दूसरे थे। ऋषभदेव भगवान के समय में नहीं। वे तो दूसरे इन्द्र थे। अभी दूसरे इन्द्र हैं। वे इन्द्र आये। (उन्होंने कहा) क्यों भरत! अरे यह भरत का सूर्य आज अस्त होता है। अरे! हमारा समाधान करनेवाला सूर्य जाता है। वे तो ऐसा बोले। यहाँ तो कहते हैं कि समाधान की पर्याय तो अन्दर से आती है परन्तु व्यवहार की रीति ही ऐसी होती है। भाषा और व्यवहार के कथन इस प्रकार के होते हैं। विनय है, बहुमान है। क्षायिक समकिती हैं, उस समय तीन ज्ञान हैं—मति, श्रुत, अवधि, भरत को।

मुमुक्षु : तद्भव मोक्षगामी।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस भव में मोक्ष। इन्द्र ने कहा, भरत! तुम्हें तो इस भव में मोक्ष है न, हमें तो अभी एक देह धारण करना है। हम इन्द्र हैं, मनुष्य होकर हम मोक्ष जायेंगे। तुम तो इस भव में (मोक्ष जाओगे)। (भरतजी कहते हैं), इन्द्र! सब खबर है, परन्तु यह

विकल्प ऐसा आये बिना रहता नहीं है, इस कारण से, इस योग्यता के कारण यह विकल्प आता है, तथापि वे मानते हैं कि मेरी ज्ञान की दशा के समाधान मुझे अनुसरकर होते थे। गजब बातें, भाई! समझ में आया?

उपयोग, धर्म है; जीव, धर्मी है। दीपक और प्रकाश जैसा उनका सम्बन्ध है। दीपक, वह धर्मी है; प्रकाश, वह धर्म है। उनका सम्बन्ध है। कहो, समझ में आया? आगे आयेगा, उपयोग की व्याख्या में कहीं। ३१९ लिखा है। पृष्ठ ३१९ है न? (शुद्धोपयोग अधिकार में है) ३१९ में है। इस ज्ञान का धर्म तो दीपक की भाँति स्व-पर प्रकाशकपना है। दीपक की उपमा है, ३१९ पृष्ठ है। इस ज्ञान का धर्म तो दीपक की भाँति स्व-पर प्रकाशकपना है। ऐसी बीच में लाईन है। ये तो पढ़ा हो न, इसलिए लिखा हो। देर लगे, भाई! पृष्ठ वापस अलग पड़ना चाहिए न। इस ज्ञान का धर्म तो दीपक की भाँति स्व-पर प्रकाशकपना है। है या नहीं? ओहो..हो..! अभी तो ज्ञान या दर्शन की एक समय की पर्याय उसकी स्वतन्त्रता से हो, ऐसी भी अभी खबर नहीं और उसके (पर के) कारण होती है, वे तो बड़ी भ्रमणा में पड़े हैं। समझ में आया? आहा..हा..!

दीपक और प्रकाश जैसा उनका सम्बन्ध है। ज्ञान और दर्शन के भेद से यह उपयोग दो प्रकार का है... ज्ञान-दर्शन के भेद से उपयोग के दो प्रकार हैं। **(अर्थात्, उपयोग के दो प्रकार हैं — ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग)। इनमें ज्ञानोपयोग भी स्वभाव और विभाव के भेद के कारण दो प्रकार का है।** देखो! वापस ज्ञान-उपयोग के दो प्रकार। पहला उपयोग साधारण कहा। उस उपयोग के दो प्रकार : ज्ञान और दर्शन। अब, ज्ञान-उपयोग के भी दो प्रकार। एक स्वभाव और (दूसरा) विभाव। प्रत्येक समय की पर्याय स्वतन्त्र है। विभाव हो या स्वभाव हो। आहा..हा..!

(अर्थात्, ज्ञानोपयोग के भी दो प्रकार हैं - स्वभावज्ञानोपयोग और विभावज्ञानोपयोग)। स्वभावज्ञान तो कैसा है? **अमूर्त, अव्याबाध, अतीन्द्रिय और अविनाशी है;...** आहा..हा..! वापस स्वभावज्ञान के दो प्रकार कहेंगे। **स्वभावज्ञान, अमूर्त, अव्याबाध,...** है। बाधा / पीड़ारहित है। निमित्त की कोई बाधा नहीं। **अतीन्द्रिय और अविनाशी है; वह भी कार्य और कारणरूप से दो प्रकार का है...** स्वभावज्ञान भी कारण और कार्य दो प्रकार का है। **(अर्थात्, स्वभावज्ञान के भी दो प्रकार हैं—कार्यस्वभावज्ञान**

और कारणस्वभावज्ञान)। कार्य तो सकल विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान है... यह स्वभावज्ञान है। उपयोग है, उसके दो भेद—ज्ञान और दर्शन। ज्ञान के दो भेद—स्वभाव और विभाव। स्वभावज्ञान के दो भेद—कारणस्वभाव और कार्यस्वभाव। समझ में आया?

(कार्यस्वभावज्ञान और कारणस्वभावज्ञान)। कार्य तो सकल विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान है.... लो। यह क्या कहा? केवलज्ञान भी चैतन्य को अनुसरकर होनेवाला केवलज्ञान है। ऐसा पहला शब्द है, वह यहाँ ले लेना। केवलज्ञान, केवलज्ञानावरणीय का नाश हो तो केवलज्ञान हो तो ऐसा कहते हैं। सोनगढ़वाले कहते हैं केवलज्ञानपर्याय स्वयं से होती है, तब केवलज्ञानावरणीय उसके कारण से नाश होता है, ऐसा नहीं, केवलज्ञानावरणीय नाश हो तो केवलज्ञान होता है, ऐसा लो। ऐई! यह क्या? रतनचन्दजी ऐसा लिखते हैं। बहुत लिखते हैं... बहुत लिखते हैं। बेचारे लोगों को भान नहीं होता। बनियों को समय नहीं मिलता। कितने ही तो चौबीस घण्टों में घण्टे-दो घण्टे आते हैं। उसमें वे ऊपर बैठे वे बातें करे। सुनकर जाना। भान कुछ होता नहीं। दस बोधा, दस बोधरी, दस बोधा का बच्चा, ऊपर कहे गप्पा, वह कहे, सच्चा। भान नहीं होता। पण्डितजी! आहा..हा..!

यह कहाँ ले गये, देखो! उपयोग की व्याख्या चैतन्य को अनुसरकर होनेवाले परिणाम। वे परिणाम चैतन्य के सामान्य दो। अब उनके भी दो भेद—ज्ञान और दर्शन। उस ज्ञान के भी दो भेद—स्वभाव उपयोग और विभाव उपयोग। स्वभाव उपयोग के भी दो भेद—कारणस्वभाव उपयोग और कार्यस्वभाव उपयोग। उसमें कार्यस्वभाव उपयोग की व्याख्या चली। सर्वथा निर्मल केवलज्ञान। वह केवलज्ञान की पर्याय हुई। चैतन्य को अनुसरकर होती है। देखो! पूर्व के चार ज्ञान थे, इसलिए केवलज्ञान होता है, ऐसा भी नहीं है—ऐसा यहाँ तो कहते हैं, भाई! क्या कहा? जीव में केवलज्ञान होता है, तो केवलज्ञानावरणीय का नाश होता है, इसलिए होता है - ऐसा नहीं है। पूर्व में चार ज्ञान थे, उनका नाश होकर केवलज्ञान होता है, ऐसा भी नहीं है। चैतन्य को अनुसरकर केवलज्ञान होता है। पण्डितजी! उसमें ऐसा है? पहले ऐसा पढ़ा था?

मुमुक्षु : ....चैतन्य अनुविधायी परिणाम, वह उपयोग, यह तो पढ़ लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्ची बात। बात तो ऐसी है। स्पष्टीकरण समझे बिना... आहा..हा..!

समझ में आया ? यह तो तत्त्व की स्थिति है, ऐसा इसे मानना चाहिए। जिस प्रकार से स्थिति से विपरीत माने तो वह मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है।

केवलज्ञान सकल-विमल। पर्याय है न? इसलिए कार्य (है)। पर्याय है न? इसलिए कार्य है। **सकल विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान है...** एक समय में तीन काल, तीन लोक जानने की पर्याय है। वह भी पर्याय उस समय में जो हुई, वह चैतन्य को अनुसरकर हुई है। निमित्त के अभाव को अनुसरकर या पूर्व के चार ज्ञान थे, उन्हें अनुसरकर (हुई है), ऐसा नहीं है। आहा..हा..! अथवा वह केवलज्ञान की पर्याय चैतन्य को अनुसरकर (हुई है)। अन्दर दूसरे गुणों को अनुसरकर हुई है, ऐसा भी नहीं है। समझ में आया ? अन्दर तो त्रिकाल श्रद्धागुण है, आनन्दगुण है, उन्हें अनुसरकर हुई, ऐसा नहीं। समझ में आया ? वह केवलज्ञान की पर्याय कार्यस्वभाव निर्मल ज्ञान-परिपूर्ण दशा, वह भी चैतन्य के गुण को अनुसरकर हुई है। उस गुण में उस शक्ति की ताकत थी, वह उस समय बाहर आयी है।

मुमुक्षु : दूसरे गुण को...

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे गुण की यह पर्याय नहीं। यह तो चैतन्यगुण की पर्याय है। समझ में आया ? दूसरे गुण का आश्रय इसमें है नहीं। भले अभेद में आ जाये परन्तु ज्ञान -उपयोग चैतन्य को अनुसरकर हुआ है। समझ में आया ?

नियमसार (अर्थात्) मोक्ष का मार्ग और मोक्ष की बात करूँगा, कहते हैं। '**मग्गो मग्गफलं**' '**मग्गफलं**' यह केवलज्ञान। यह केवलज्ञान कैसे हुआ ? चैतन्य को अनुसरकर होता है। मोक्षमार्ग हुआ; इसलिए हुआ, ऐसा भी नहीं। देखो न! यह स्वतन्त्र...

मुमुक्षु : नियमसार अर्थात् नियम बताया।

पूज्य गुरुदेवश्री : नियम बताया कि इसका निश्चय नियम क्या है ? इसकी वास्तविक स्थिति क्या है, वह बताते हैं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)